P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-IV*December-2014
E: ISSN NO.: 2349 -980X

शिक्षा और समाज

आशा रानी
व्याख्याता,
राजनीति शास्त्र विभाग,
जी.एस. एस. एस.,
फतेहाबाद।

सारांश

शिक्षा आधुनिकीकरण और मानवीय विकास का मूल है। शिक्षा एक सामान्य व्यक्ति की रोटी और मकान जैसी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास करना है ताकि उसका जीवन सही दिशा ग्रहण कर सकें। शिक्षा संस्कृति अर्थ और राजनीति तीनों का सम्मिश्रण है। जो कि विकास प्रक्रिया को मापने का एक सही साधन है। विधालय शिक्षा का मुख्य अंग विधार्थी है क्योंकि वे देश का भविष्य है और शिक्षा उनका मुख्य आधार है। शिक्षा सीखने की वह प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है।[1]

मुख्य शब्द : शिक्षा, समाज, विकास, शिक्षा केन्द्र, सामाजिक कुशलता, प्रेरणा, लक्ष्य, उददेश्य, व्यक्तित्व विकास।

प्रस्तावना

जन्म से समय बालक असामाजिक एवं असहाय होता है। उसकी न कोई संस्कृति होती है, न कोई आदर्श, किन्तु जैसे–2 बड़ा होता है वह सामाजिक प्राणी बनता जाता है। उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति भोजन द्वारा की जाती है। किन्तु उसे सामाजिक और सांस्कृतिक मानव बनाने में शिक्षा की महती भूमिका होती है।

इस रूप में शिक्षा जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसलिए आदिकाल से किसी न किसी रूप में शिक्षा प्रदान की जाती रही है।

शिक्षा की व्यक्ति के समाजीकरण करने, समाज का श्रेष्ठ नागरिक बनाने, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्राणी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी संदर्भ में शिक्षा की परिभाषा एवं अर्थ तथा इसकी भूमिका को समझने के लिए शिक्षा से सम्बधित प्रमुख सम्प्रत्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। साथ ही उददेश्य, लक्ष्य और मूल्य आदि के सम्प्रत्ययों को भी स्पष्ट किया जाएगा। शिक्षा तथा इससे सम्बुद्ध प्रमुख मूल तत्व है।

1. शिक्षा 2. अनुदेशन 3. विद्यालयीकारण 4. प्रशिक्षण

शिक्षा

शिक्षा के अर्थ पर विभिन्न शिक्षा विदों ने प्रकाश डाला है और विभिन्न देश, काल परिस्थिति आदि के अनुसार इसकी व्यांख्या की है। कही से जीवन चलाने वाली प्रक्रिया मानी गई है तो कही इसे व्यक्ति विशेष द्वारा किसी विशिष्ट स्थान तक सीमित किया गया है किन्तु किसी भी प्रकार का ज्ञान जो बुद्धि का संवर्धन करता है, शिक्षा का पर्याय हो सकता है। आज अनेक शब्द शिक्षा का पर्याय बन गए है यद्यपि उनके अर्थो में भिन्नता है और वे विशिष्ट प्रकियाओं के ही द्योतक है।

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द संस्कृत में 'शिक्ष्' धातु से बना है– 'शिक्ष् शिक्षणे' जिसका अर्थ– सीखना, अध्ययन करना, ज्ञानर्जन करना है। इसका प्रेरणार्थक रूप सिखाना है। शिक्षा एवं विद्या शब्दों का प्रयोग सीखने, सिखाने की प्रक्रिया रूप में किए जाते है।

अग्रेजी भाषा में एजूकेशन शब्द हिन्दी के 'शिक्षा' शब्द का ही रूपान्तर है एजूकेशन शब्द की व्युत्पति लेटिन भाषा के 'एजूकेटम' शब्द से हुई है। शिक्षा के अर्थ में ही लेटिन के दो शब्द एजूकेयर और एजूसीयर भी है।

एजूकेटम – प्रशिक्षण, शिक्षण
एजूकेयर – शिक्षित करना, बाहर निकालना, आगे बढ़ाना
एजूसीयर – विकसित करना, बाहर निकालना

महात्मा गॉधी के अनुसार, ''शिक्षा का कार्य आत्मा को जो उसमें है विकसित करने मं सहायता देना है।''

काण्ट– ''शिक्षा व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास है जिसको उसमें क्षमता है''।

अनुदेशन

कक्षा में अध्यापक द्वारा दिया जाने वाला सूचनात्मक, तथ्यात्मक एवं समीक्षात्मक ज्ञान–अनुदेशन कहलाता है। यह शिक्षा र्थी के बौद्धिक पक्ष से सम्बन्धित होता है। अनुदेशन–शिक्षा के संकुचित अथवा औपचारिक रूप से सम्बधित है। इस रूप में यह शिक्षा का एक अंग है। सम्पूर्ण शिक्षा नहीं।

गेट्स के अनुसार, ''अनुदेशन वह प्रक्रिया है जो शिक्षार्थी को कुछ उददेश्यों की ओर प्रभावित करती है।''

विद्यालयीकरण

अनुदेशन की भाँति विद्यालयीकरण भी सकुंचित शिक्षा अथवा औपचारिक है। इस रूप में यह शिक्षा का एक पक्ष है। विद्यालयीकरण शब्द विद्यालय से निर्मित है।

जॉन डी वी के शब्दों में, ''स्कूल एक विशिष्ट पर्यावरण है जहॉ एक निश्चित जीवन–स्तर व निश्चित प्रकार के क्रियाकलापों तथा व्यवसायों का प्रावधान इस उद्देश्य से किया जाता है कि बालक का वांछित दिशा में विकास हो सके''।

प्रशिक्षण

किसी एक ही कार्य में दक्षता प्राप्त करना प्रशिक्षण कहलाता है और दक्षता एक ही कार्य को पुनः करके प्राप्त की जा सकती है। इस रूप में प्रशिक्षण बौद्विक न होकर दक्षतापरक होता है। किसी भी कार्य को बारम्बार करके उसमें इतनी कुशलता प्राप्त करना कि वह हमारी आदत का ही एक अंग बन जाए, प्रशिक्षण कहलाता है। प्रशिक्षण में अभ्यास शामिल है।

वैब्सटर्स डिक्शनरी में प्रशिक्षण का अर्थ, ''अनुशासन अथवा अनुदशन द्वारा बालक में आदत, विचार या व्यवहार का विकास करना है।

शिक्षा से संबद्ध अवधारणाऍं व तत्व

शिक्षा के क्षेत्र में प्रयुक्त सम्प्रत्ययों में लक्ष्य, उददेश्य, और मूल्य तीनों शिक्षा से प्रत्यक्षतः सम्बधित है, किन्तु इनमें से प्रथम दो लक्ष्य और उद्देश्य की प्रयुक्ति में कुछ भ्रांति है। कुछ विद्वान लक्ष्य को उद्देश्य और उद्देश्य को लक्ष्य के रूप में प्रयुक्ति में कुछ भ्रांति है। इसमें लक्ष्य को ।प्डै के रूप में और उद्देश्य की व्इरमबजपअमे के रूप में देखते है।

शिक्षा के तत्व व प्रत्यय

1. लक्ष्य 2. उद्देश्य 3. मूल्य

लक्ष्य

साध्य के अनुकूल साधन होने पर ही अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। कहा गया है कि लक्ष्य–विहीन जीवन कुत्सित है, उसी भांति शिक्षा के क्षेत्र में भी यही कहा गया है कि लक्ष्य–विहीन शिक्षा निश्प्रयोजन है

शिक्षा के लक्ष्यों पर विचार किए बिना शिक्षा की प्रक्रिया का मार्गदर्शन सुचारू रूप से नहीं किया जा सकता। कीटिग ने कहा था कि शिक्षा की प्रक्रिया के सार्वभौमिक लक्ष्यों का पता लगाना असंभव है इसका अर्थ है कि लक्ष्य भी व्यक्ति वैविध्य रखते है : किसी एक व्यक्ति का लक्ष्य अन्य व्यक्ति के लिए अनुसूचित असंगत यहाँ तक की हास्यप्रद हो सकता है। बालक और प्रगतिशील समाज में गहरी खाई को भरने मे षिक्षा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

उददेश्य

उद्देश्य शब्द संस्कृत भाषा से निर्मित है जिसका अर्थ दिशा दिखाना या उपर की ओर दिशा दिखाना।

सी0 बी0 गुड के अनुसार शिक्षा– परिभाषा कोश, में इसे इस प्रकार परिभाषित किया है– ''उद्देश्य वह मापदण्ड है जिसे छात्र द्वारा विद्यालय क्रिया को पूर्ण करके प्राप्त किया जाता है?'' इस रूप में उद्देश्य कक्षा–कक्ष और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से सम्बधित होते है।

वी0 एस0 ब्लूम ने उददेश्यों को पाठ्यक्रम और मूल्यांकन से सम्बधित करते हुए इसको शिक्षण की एक निश्चित दिशा प्रदान करने में सहायक बताया है, ''शैक्षिक उददेश्यों की सहायता से केवल पाठ्यक्रम की रचना और अनुदेशन के लिए निर्देशन ही नहीं दिया जाता, अपितु ये मूल्यांकन की प्रविधियों के विशिष्टीकरण में भी सहायक होते है।

मूल्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज मं रहकर व्यक्ति को उसके द्वारा निर्धारित आदर्शो का पालन करना पड़ता है। अनेक नियम होते है जो कि समाज की आधारशिला होते है। वास्तव में ये नियम–उपनियम मनुष्यों द्वारा ही तय किए होते है। जो उसकी संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते है। मानव ही एक ऐसा सर्वोत्कृष्ट प्राणी है जो संस्कृति का निर्माता है और संस्कृति द्वारा ही कुछ नियम, व्यवहार, लक्ष्य, उद्देश्य आदि निर्धारित होते है। जिनके आधार पर कार्य करके व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है, यही आदर्श मूल्य कहलाते है जो बताते है कि क्या अच्छा हैं? क्या बुरा हैं क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? इन आदर्शो से ही समाज व्यवस्था सुचारू रूप से चलती है। जिनके आधार पर सामाजिक परिस्थितियों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री राधाकमल मुखर्जी के अनुसार, ''मूल्य सामाजिक रूप से स्वीकृत इच्छांए और लक्ष्य होते है जो अनुबन्ध, सीखना या सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा आत्मसात् कर लिए जाते है और जो व्यक्तिगत वरीयता, प्रतिमानों और महत्वकाक्षाओं का स्वरूप धारण कर लेते है।[2]

शिक्षा का इतिहास एवं अध्ययन के विषय

प्राचीन उतर भारत में 8वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी के मध्य विभिन्न वैज्ञानिक तथा अन्य शिक्षा के प्रभावशाली उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक केन्द्र थे, किन्तु इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में शिक्षा एवं साहित्य से अभिप्राय ललित–कथा, ललित–साहित्य, काव्य, नाटय, कथा, उपन्यास से था न कि वर्तमान साहित्य शब्द की व्यापकता को वाडमय के विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त करना जिसमें विद्या सम्बधी सम्पूर्ण विषय समाहित हो जाते है। अल्बरूनी ने शिक्षा के विषयों को निम्न ढ़ंग से प्रस्तुत किया है – 4 वेद, 18 पुराण, 20 स्मृतियां, रामायण, महाभारत जैमिनी कृत मीमांसा, बृहस्पति कृत लोकायतन, अगसत्य कृत

अगस्त्यमत, शर्वनवर्मन कृतकांतत्र तथा शनिदेव वृत, उग्रूभूति शिश्यहितावृत, पुलिश का गणित, विषयक सिद्धांत, बराहमिहिर, आर्यभट्ट आदि विषयगत मतों और ग्रथों का उल्लेख। दण्डी ने शिक्षा के विषय में सभी लिपियॉ, भाषाओं, वेद–वेदांग, उपवेद, काव्य, नाटक कला, तर्कशास्त्र मीमांसा, राजनीति, संगीत, छन्द, रसायन, युद्ध, विद्या, द्यूतक्रीडा, चौर्यविद्या आदि का उल्लेख किया है। लक्ष्मीधर ने ब्रहमाचारीकाण्ड में तत्कालीन चौदह प्रकार की विधाओं चार वेद, 6 अकड़ मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र तथा पुराण एवं चार गौड़ विषय– आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है। इन विधाओं में व्याकरण और छन्द का बहुत बड़ा महत्व था। ज्योतिष तथा खगोल विज्ञान की उच्च शिक्षा का प्रचलन था।

जैन आगम में 84 शिक्षाओं के विशेष अध्ययन के लिए– 11 अंग, 12 उपांग, 6 छेदसूत्र, 4 मूलसूत्र, 10 प्रकीर्णक, अनुयोग द्वार सूत्र, नन्दीसूत्र, 12 नियुक्ति, विशेषावश्यक भाश्य, 20 अन्य प्रकीर्णक, र्प्यूशणकल्प, जितकल्प सूत्र, श्राद्धजितकल्प, पाक्षिक सूत्र, वन्दिन्तुसूत्र, क्षामासूत्र, यतिजित कल्पसूत्र, ऋषिभषित उल्लेखित है। जबकि सिद्धांत दर्शन साहित्य, बौद्ध साहित्य तथा ब्राहामण साहित्य पढ़ने के मुख्य स्त्रोत थे। अपभ्रंशकाव्यत्री में उल्लेखित है कि प्राचीन कला साहित्य सम्बंधी, कविता, नाटक, ज्योतिष विज्ञान, हस्तकलाविज्ञान, हस्तरेखा विज्ञान, काव्य, छन्दशास्त्र, व्याकरण आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

7वीं शताब्दी में जब हवेनसॉग उतर भारत की यात्रा पर आया था तो उसने गुजरात तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में 5 प्रकार के विज्ञानों को प्रचालित पाया था। यथा– व्याकरण विज्ञान–जिसमें शिक्षक शब्दों को व्याख्यान द्वारा स्पष्ट कर उनके महत्व को बताता था : द्वितीय– दक्षयान्त्रिक विज्ञान था जिसमें प्रगति युग्मों एवं तकनीकी ज्ञान दिया जाता था : तृतीय औषधी विज्ञान – जिसमें आयुर्वेद एवं चिकित्सा की शिक्षा दी जाती थी : चतुर्थ – विवके विज्ञान – जिसमें करण–कारण तथा सनसनी के विषयों में पता लगाया जाता था तथा पाचंवा – आतंरिक विज्ञान था जो मनुष्य को समस्त ज्ञानेन्द्रियों के मूलभूत विषयों की जानकारी देता था। किंतु इस प्रकार के विज्ञानों में शब्द, विद्या और आध्यत्म विद्या का अधिक प्रचलन एंव प्रसार था। इनमें शिल्प स्थान, ज्योतिष विद्या एवं चिकित्सा विद्या के उच्चकोटी के विज्ञान थे। व्यवसायिक क्षेत्र में उनका विस्तृत एवं महत्वपूर्ण था। मुख्य विज्ञान अनेक विभागों, उपभागों एवं खण्डों में विभक्त था, जिनकी पृथक–पृथक विशेषताएं थी। हेमचन्द्र के अनुसार तर्कशास्त्र साहित्य एवं अन्य दर्शनशास्त्र के अतिरिक्त पुराण, समृति, नाटक आदि विषयों में लोगों ने निपुणता प्राप्त की थी। हरिद्रशूरी ने शिक्षा के 85 विषयों का वर्णन किया है। उपमितिभ्सव प्रंपचकथा में शिक्षा के 16 विषय तथा प्रभावक चरित में 64 कलाओं का विवरण प्राप्त होता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 7वी शताब्दी से 12वीं शताब्दी के मध्य अध्ययन एवं अध्यापन के मुख्यतः 1. वेद, 2. वैदिक साहित्य– शाखा छन्द, निरूक्ति कल्प, ज्योतिष तथा व्याकरण, 3. ब्राहमण संहिता तथा उपनिषद 4. गृहसूत्र धर्मसूत्र 5. अन्य विषयों का अध्ययन जैसे–सूत्रों के परिशिष्ट का अध्ययन, प्रयोग, यान सम्बंधी ज्ञानार्जन, तथा कारिका अर्थात्, धर्म विषय का पद्यमय वर्णन करने वाला साहित्य एवं लौकिक साहित्य में – अर्थशास्त्र, शिल्पशास्त्र, वार्ता तथा उसके 6 प्रमुख अंग, जैसे विषय प्रचलित थे।

वैदिक एवं अन्य शिक्षा

प्रचान काल से ही भारत धर्म प्रधान देश रहा है। समाज की इस स्थिति एवं विश्वास का प्रभाव पाठ्यक्रम पर भी पड़ा। प्रारम्भिक अवस्था में वेद, वेदांग, पुराण तथा अन्य धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थ ही वैदिक शिक्षा एवं अन्य विषयों के केन्द्र बिन्दु थे। वैदिक शिक्षा पवित्र थी किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं था कि अन्य मौलिक विषयों की अवहेलना की गयी। बाणभट्ट ने वैदिक एवं अन्य विषयों की शिक्षा को विभिन्न महाजनपदों पृथक–पृथक रूपों में बताया था।

वैदिक शिक्षा

पूनीत वैदिक शिक्षा शूद्रों के लिए वर्जित थी। ब्राहमणों को चौदह विद्याओं ओर कर्मकाण्डों की शिक्षा दी जाती थी। प्रबन्ध कोष में वैदिक शिक्षा एवं अन्य 72 विषयों का उल्लेख मिलता है। इनमं गणित, नृत्य काव्य गीत, व्याकरण, ज्योतिष, रसायन, रत्नपरीक्षा, यंत्रवाद, रसवाद, भिक्षक–विज्ञान, वैद्यकी तर्कशास्त्र, इतिहास धातुकर्म एवं शिल्पी कार्य, मुख्य विषय थे। अल्बरूनी क्षत्रियों के लिए वेदाध्ययन तो बताया है लेकिन वे वेदों की शिक्षा नहीं दे सकते थे। राजकुमारों के लिए पृथक–पृथक शिक्षा की व्यवस्था थी। वे वेद, पुराण, स्मृति, आगम, नाटक, इतिहास, भिक्षक, ज्योतिष आदि की ग्रहण करते थे। वेद वेदाग एवं विभिन्न शास्त्र वैदिक शिक्षा के अन्तगर्त ही आते है। बाणभट्ट ने उल्लेख किया है कि उसके ग्राम में ब्राहमणों के घर गुरूकुल के स्वरूप थे, जहां वैदिक शिक्षा के अर्न्तगत वेद–वेदांग, आगम, तर्कशास्त्र मीमांसा एवं ज्योतिष की शिक्षा दी जाती थी। इन्हीं गुरूओं में वैदिक शिक्षा एवं उसके विभिन्न अंग यज्ञ–सम्पादन, विधि और अग्निहोम की क्रियांए सिखाई जाती थी। कादम्बरी में वैदिक शिक्षा के अर्न्तगत महाभारत, रामायण, पुराण तथा वृहत्कथा का विवरण दिया गया है। वृहत्कथा के अध्ययन से पता चला है कि कथा साहित्य लोकप्रिय हो गया था। महाभारत के अध्ययन से पता चलता है कि कथा साहित्य लोकप्रिय हो गया था। महाभारत और रामायण लोकप्रिय होने के कारण स्त्रियां उसका गान करती थी। बनारस में वैदिक शिक्षा के अर्न्तगत, श्रृति, स्मृति, रामायण तथा पुराण का मनोवेग से अध्ययन किया जाता था। यहां अन्य शिक्षण केन्द्रों की भांति वेद–वेंदाग तथा पुराणों का अध्ययन एकान्त और खुले वातावरण में कराया जाता था। वेद की शिक्षा सडकों पर, नगरों में नहीं दी जाती थी। शूद्र तथा नाई के सामने भी वैदिक शिक्षा नहीं दी जाती थी।

8वीं शताब्दीजक ब्राहमणों वेदों के अध्ययन के साथ 18 प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करने लगे। वेद वेदांग की शिक्षा के साथ दण्डिन ने चौर्य, कर्म, द्यूत कौशल, संगीत शिक्षा ,साहित्य ललित कला, वीणा वाद्य,

भिक्षक, ज्योतिष, रसायन एवं व्याकरण 1 का उल्लेख किया है। सोमदेव ने वैदिक शिक्षा के पाठ्य विषयों के अर्न्तगत चार वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूकित, छन्द, ज्योतिष, सोलह पुराण, मीमांस न्याय तथा धर्मशास्त्र का उल्लेख किया है। मानासोल्लास से ज्ञात होता है कि राजकुमारों को वैदिक शिक्षा के अर्न्तगत वेद, धर्मशास्त्र, व्याकरण, तर्कशास्त्र, खगोल, ललितकला, धनुर्वेद आदि की शिक्षा प्रदसन की जाती थी, राज कुमारो को वेद–वेदांग दण्डनीति, तर्क, कृशि तथा दस्तकारी की शिक्षा दी जाती थी, जो वैदिक शिक्षा का अंग थी।

अन्य शिक्षा

प्राचीन उतर भारत में शिक्षा के बढ़ते हुए स्वरूप एवं आवश्यकता ने अन्य विषयों की शिक्षा को मुखरित होने का अवसर दिया। 8वीं शताब्दी में शिल्पकला, मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्यकला, संगीतकला एवं सैनिक शिक्षा विशेष रूप से शूद्र वर्गों में प्रचलित रही। मनु स्मृति में अन्त्यज जातियों की विविध शिल्प एवं व्यवसाय की शिक्षा के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है। कालान्तर में शिक्षा के इन्हीं बदलते हुए स्वरूप एवं व्यवसायिक रूप ने शूद्र वर्ग की बढ़ई, कुम्हार, सुनार, राजगीर तथा लुहार आदि व्यवसायिक वर्गों प्रचलित रही। मनु स्मृति में अन्त्यज जातियों की विविध शिल्प एवं व्यवसाय की शिक्षा के सम्बध में उल्लेख मिलता है। कालान्तर में शिक्षा के इन्हीं बदलते हुए स्वरूप एवं व्यवसायिक रूप ने शूद्र वर्ग की बढई, कुम्हार, सुनार, राजगीर तथा लुहार आदि व्यवसायिक वर्गों को जन्म दिया। पूर्व मध्यकाल में इस प्रकार की शिक्षा, शिक्षा घरों में परम्परागत रूप से दी जाती थी।

संगीत शिक्षा

8वीं शताब्दी में संगीत तथा नृत्य शिक्षा का पूर्ण विकास हो चुका था। संगीत शिक्षा के अर्न्तगत स्वर, साधना, मूर्छना तथा नृत्य पर विशेष बल दिया जाता था। प्रायः ये शिक्षा कुलीन परिवारों में प्रचलित थी। कुशल, संगीत, प्रवीण नर्तकी को जलवाद्य का भी ज्ञान था। जलवाद्य की ध्वनि मृदंग से भी अधिक मधुर तथा विचित्र होती थी। कथा सहित सागर में उल्लेख है कि अयोध्या के राजा कृतवर्मन की पुत्री मृगवती ने नृत्य शिक्षा, संगीत शिक्षा तथा अन्य ललित कलाओं में विशेष योग्यता प्राप्त की थी।

शिल्प एवं अन्य कलाओं की शिक्षा

8वी शताब्दी में शूद्र वर्ग शिल्प तथा अन्य व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त करता था। जिसके कारण वर्ग विभेद के साथ अनेक शिल्पों का जन्म हुआ। जिससे शिल्प के आधार पर कुम्हार, बढई, लोहार, तथा सुनार जातियों का व्यवसायिकरण के द्वारा प्रसार होने लगा।

सैनिक शिक्षा

8वीं शताब्दी में संगीत, सैन्य शिक्षा तथा नृत्य शिक्षा का पूर्ण विकास हो चुका था। क्षत्रियों के साथ ब्राहमण भी सैनिक शिक्षा प्राप्त करते थे। अर्थशास्त्र में ब्रहामणों की सेना का विवरण मिलता है। धीरे–धीरे वैश्य और शूद्र भी सेना में भर्ती होकर अस्त्र चलाना जान गए थे। जिसके कारण वैश्यों ने भी ब्राहमणों की भांति विभिन्न जातियों की सेना रखना प्रारम्भ कर दिया। सेना में सभी जातियों तथा सभी प्रकार की सेना को व्यूह रचना, अस्त्र संचालन, रणनीति तथा विविध नियम से अवगत कराया जाता था। रामायण तथा महाभारत में सैनिक प्रशिक्षण का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में धनुर्वेद की तुलना सैनिक शिक्षा से की जाती थी। इस अवसर पर ब्राहमण विधार्थी धनुष, क्षत्रिय, खड़ग, वैश्य को बर्छी और गदा प्रदान की जाती थी।

चित्रकला एवं चित्रकारी

8वीं शताब्दीमें चित्रकला एवं उससे सम्बद्ध विषयों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। चित्रकार को सर्वप्रथम रेखांए तथा चाप खीचनें का अभ्यास कराया जाता था। जब चित्रकला का विधार्थी प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लेता था तब आचार्य उसे मन्दिरों में अपनी सहायता के लिए ले जाता था। हेमचन्द्र ने उच्च श्रेष्ठ एवं निपुण चित्रकारों का उल्लेख किया था।

शिक्षा केन्द्र

प्रारम्भिक काल में परिवार में ही साहित्यिक एवं व्यवसायिक शिक्षा दी जाती थी अभिभावक ही अपने बालको के गुरू होते थे। इसी प्रकार बाणभटट के पितमह अर्थपति की व्यक्तिगत शिक्षा देने वालों में बडी ख्याति थी। यह परम्परा पूर्व मध्यकाल तक भी चलती रही।

आश्रम एवं मन्दिर

कथा सागर में आश्रमों की शिक्षा तथा अध्यापकों का उल्लेख किया है। थानेश्वर में शिक्षा प्रदान की जाती थी। राजा पुष्यपति के आगमन पर यहां के आचार्यों तथा विधार्थियों ने उनका स्वागत किया था। हर्षचरित में विन्ध्यांचल पर्वत पर निवास करने वाले दिवाकर मित्र के आश्रम का उल्लेख किया है। इस प्रकार हिन्दू मन्दिरों में भी शिक्षा दी जाती थी।

जैन एवं बौद्ध मठ

प्राचीन उतर भारत के जैन मठों तथा विहारों ने भी शिक्षा देने का कार्य किया। गणधर सारधषतक में एक ऐसे जैन मठ का उल्लेख किया जिसमें अनाथ अपंग शिक्षा प्राप्त करते थे। 8वीं शताब्दी में जिनेश्वराचार्य के जैन मठ में श्रावक पुत्र पढ़ते थे। 8वीं शताब्दी में जिनेश्वचार्य के जैन मठ में ज्ञावक पुत्र पढते थे। इस मठ में सर्पाकर्षिणी एवं सर्पमोचिनी विद्याओं के साथ लक्षण, तर्क, अलंकार आदि का अध्ययन किया जाता था।

उच्च शैक्षणिक केन्द्र

आठवीं शताब्दी में उच्च शिक्षा के केन्द्रों में बौद्ध मठों का प्रमुख स्थान था। इन मठों तथा विहारों में शिक्षा के विषयों, तर्कशास्त्र दर्शन तथा नवीन शैक्षिक प्रवृतियों की शिक्षा दी जाती थी। अतः ये विहार मठ शिक्षा के केन्द्र बन गए। कालान्तर में इन्हीं मठों और विहारों ने विश्वविद्यालय का रूप लिया और बौद्ध भिक्षु आचार्य का कार्य करने लगे।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विक्रमशील विश्वविद्यालय का प्रमुख महत्व था। इसकी स्थापना 8वीं शताब्दी में पाल शासक धर्मपाल ने की थी। विशाल भू–भाग में फैले इस विश्वविद्यालय में 6 अन्य विद्यालय थे, जिनमें से प्रत्येक में 108 शिक्षक थे। प्रवेश परीक्षा 6 बार पण्डित लेते थे।

व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा

प्राचीन उतर भारत में व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा का जन्म, भारतीय एवं विदेशी संस्कृति के समन्वय का प्रतीक था। व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा का प्रथम पाठ, नियम, उपनियम तथा प्रेरणा बालक अपने सरंक्षक से प्राप्त करता था। यदि परिवार में इस प्रकार की शिक्षा नहीं मिल पाती थी तो जिज्ञासु यह शिक्षा अन्य स्त्रोतों से प्राप्त करता था। व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा के अर्न्तगत भूगोल, गणित, तकनीकी शिक्षा, व्यापार विधि एवं ज्योतिष का ज्ञान कराया जाता था। व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा न केवल श्रेणी निगम, व्यापार तथा पग तक सीमित था अपितु उससे अभ्यार्थी पर्याप्त प्रषिक्षण ग्रहण कर सकते है। इन अभ्यार्थी को विभिन्न तकनीकी ज्ञान से परिचित करा के विधिवत परीक्षा ली जाती थी। मार्कोपोलो ने अपने विवरण में व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा का वर्णन किया है।[3]

वर्तमान भारतीय समाज की प्रकृति एवं स्वरूप

भारतीय समाज विविधताओं का योग है। यहाँ अनेक धर्म, जाति, संस्कृति, एवं वर्गों के लोग निवास करते है। राजनैतिक दृष्टि से यह एक लोकतात्रिंक समाज है जिसकी गणना विकासशील देशों में की जाती है। विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में प्रगति के फलस्वरूप भारत में वैज्ञानिक जागरूकता का विकास हुआ है।

1. विविध जातियाँ 2. धार्मिक समूह 3.सास्कृतिक विविधता 4. लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली 5. कृषि प्रधान एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था। 6. वैज्ञानिक जागरूकता

शिक्षा में जनतंत्र की उत्पति का आधार

शिक्षा का जनतात्रिंक आदर्श सृजनात्मक आदर्श आधार है। इस व्यवस्था में गणतंत्र और मानवता के लिए जनमानस तैयार किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की यह प्रतिबद्धता हो जाती है। कि वह व्यवहार, अनुभव व कौशल में विकासात्मक परिवर्तन लाए।

हुमायूँ कबीर के अनुसार– ''यदि जनतंत्र को सचमुच प्रभावाशाली होना है एवं प्रत्येक व्यक्ति को अपने पूर्ण विकास की गारंटी देना है तो शिक्षा को सार्वभौमिक तथा निशुल्क होना चाहिए।''

समाजवाद एवं शिक्षा

समाजवाद की धारणा के अनुसार शिक्षा का स्वरूप क्या हो? इसकी एक रूपरेखा उपलब्ध हो। इसका कारण यह है कि विश्व का कोई भी राष्ट्र पूर्णतः प्रजातात्रिंक समाजवादी नहीं है जो उसके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करे।

सभी समाजवादी देशों में एक निश्चित आयु तक सभी स्तरों पर शिक्षा निशुल्क व सार्वभौमिक होनी चाहिए। किसी वर्ग भेद के बिना शिक्षा के सुअवसर मिलना चाहिए। युवक और युवतियों को व्यक्तित्व के सामान्य गुणों के विकास का अवसर मिलना चाहिए। युवकों व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

शिक्षा एवं धर्मनिरपेक्षता

धर्म निरपेक्ष राज्य वह राज्य है जो व्यक्ति एवं समूह को धर्म की स्वतंत्रा प्रदान करता हैं, व्यक्ति को किसी विशेष धर्म का अनुयायी न मानकर एक नागरिक के रूप में स्वीकार करता हैं, सवैंधानिक रूप से किसी विशेष धर्म से सम्बधित नहीं होता और न यह किसी धर्म को प्रोत्साहित करता है और न ही उसमें हस्तक्षेप करता है।

शिक्षा द्वारा धर्म निरपेक्षता को बढावा

1. विद्यालय का प्रारंभ सर्वधर्म प्रार्थना से करना चाहिए।
2. धर्म की मूल प्रकृति पर वार्ता या सवांद आयोजित किए जाए।
3. विभिन्न धर्मो के पर्वो को सामूहिक रूप से मनाया जाए।

शिक्षा एवं लोककल्याणकारी समाज

लोककल्याणकारी समाज का आशय है कि राज्य प्रत्येक नागरिक के कल्याण के लिए कृतसंकल्प हो। सरकार सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के उनके मूल अधिकारों के उपभोग की सुविधाओं की व्यवस्था करना लोककल्याणकारी समाज के अर्न्तगत आता है। शिक्षा के माध्यम से भावी नागरिकों को इस प्रकार तैयार किया जा सकता है कि वे सेवा एवं त्याग की भावना से लोककल्याणकारी कार्यो में स्वेच्छा से भाग लें। राज्य के किसी भी व्यक्ति से भेदभाव न किया जाए। सरकार द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव, जाति या धर्म के आधार पर उसके मूल अधिकारों के उपभोग की सुविधा की व्यवस्था उपलब्ध कराई जाए। सभी व्यक्तियों का कल्याण हो सभी व्यक्तियों की उन्नति हो, यही लोककल्याणकारी समाज की भावना है। लोक कल्याणकारी समाज की शिक्षा इस प्रकार की हो।[4]

भारत में शिक्षा के उद्देष्य का महत्व

जब से मानव सभ्यता का सूर्य उदय हुआ है तभी से भारत अपनी शिक्षा तथा दर्षन के लिए प्रसिद्ध रहा है। यह सब भारतीय शिक्षा के उददेश्यों का ही चमत्कार है कि भारतीय संस्कृति ने संसार का सदैव पथ–प्रदर्शन किया और आज भी जीवित है। वर्तमान युग में भी महान दार्शनिक एंव शिक्षा शास्त्री इसी बात का प्रयास कर रहे है कि शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से की जाए कि हमारी संस्कृति निरन्तर विकसित होती रहे। निम्नलिखित पंक्तियों में हम प्राचीन, मध्य तथा वर्तमान तीनों युगों की भारतीय शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाल रहे है।

प्राचीन भारत में शिक्षा के उददेश्य

प्राचीन युग में भारत धर्म–प्रधान था। फलस्वरूप उस युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म की गहरी छाप लगी हुई थी। यहॉ तक की जन्म, विवाह, तथा मृत्यु आदि सभी संस्कारों को धार्मिक कृतियों के आधार पर ही किया जाता था। इस सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए निम्न पक्तियों में प्राचीन भारत की शिक्षा के उददेश्यों पर प्रकाश डाल रहे हैः

पवित्रता तथा जीवन की सद्भावना

प्राचीन भारत में प्रत्येक बालक के मस्तिष्क में पवित्रता तथा धार्मिक जीवन की भावनाओं को विकसित करना शिक्षा का प्रथम उद्देश्य था। शिक्षा आरम्भ होने से पूर्व प्रत्येक बालक के उपनयन संस्कार की पूर्ति करना, शिक्षा प्राप्त करते समय अनेक प्रकार के व्रत धारण करना, प्रातः तथा सांयकाल ईश्वर की महिमा के गुणगान करना तथा गुरू के कुल में रहते हुए धार्मिक त्यौहारों को मनाना

आदि सभी बातें बालक के मस्तिष्क में पवित्रता तथा धार्मिक भावनाओं को विकसित करके आध्यात्मिक दृष्टि से बलवान बनाती थी।

चरित्र निर्माण

भारत की प्राचीन शिक्षा का दूसरा उद्देश्य था– बालक के नैतिक चरित्र का निर्माण करना। उस युग में भारतीय दार्शनिकों का अटल विश्वास था कि केवल पढना–लिखना ही शिक्षा नहीं है वरन् नैतिक भावनाओं को विकसित करके चरित्र का निर्माण करना परम् आवश्यक है। मनुस्मृति में लिखा है कि ऐसा व्यक्ति जो सद्चरित्र हो चाहे उसे वेदों का ज्ञान भले ही कम हो, उस व्यक्ति से कहीं अच्छा है जो वेदों का पंडित होते हुए भी शुद्ध जीवन व्यतीत न करता हो।

व्यक्तित्व का विकास

बालक के व्यक्तित्व को पूर्णरूपेण विकसित करना प्राचीन शिक्षा का तीसरा उद्देश्य था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने में बालक में आत्म–सम्मान की भावना को विकसित करना परम् आवश्यक समझा जाता था।

नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का विकास

भारत की प्राचीन शिक्षा का चौथा उद्देश्य था– नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का विकास करना। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इस बात पर बल दिया जाता था कि मनुष्य समाजोपयोगी बने, स्वार्थी नहीं। अतः बालक को माता–पिता पुत्र तथा पत्नी के अतिरिक्त देश अथवा समाज के प्रति भी अपने कर्तव्यों का पालन करना सिखाया जाता था।

सामाजिक कुशलता एवं सुख की उन्नति

सामाजिक कुशलता एवं सुख की उन्नति करना प्राचीन काल शिक्षा का पाँचवा उद्देश्य था। इस उद्देश्य की प्राप्ति भावी पीढी को ज्ञान की विभिन्न शाखाओं, व्यवसायों तथा उपयोगों में प्रशिक्षण देकर की जाती थी।

संस्कृति का संरक्षण तथा विस्तार

राष्ट्रीय सम्पति तथा संस्कृति का संरक्षण तथा विस्तार भारत की प्राचीन शिक्षा का छठा महत्वपूर्ण उद्देश्य था। प्राचीन काल में हिन्दुओं ने अपने विचार तथा संस्कृति के प्रचार हेतू शिक्षा को उतम साधन माना।

मध्य युग में शिक्षा के उददेश्य

भारत के मध्य युग की शिक्षा अर्थ इस्लामी शिक्षा से हैं इसके निम्न उद्देश्य है–

इस्लाम का प्रसार

इस्लामी शिक्षा का पहला उद्देश्य मुस्लमान धर्म का प्रचार करना था। अतः जगह–जगह मकतब और मदरसे खोले गए। जिसमें मुस्लमान बालको को कुरान पढ़ाई जाती थी।

मुस्लमानों में शिक्षा का प्रसार

मुस्लिम शिक्षा शास्त्रियों का विश्वास था कि शिक्षा के द्वारा ही मुस्लमानों को धार्मिक तथा अधार्मिक बातों का अन्तर समझाया जा सकता है।

इस्लामी राज्यों में वृद्धिकरण

इस्लामी शिक्षा का तीसरा उद्देश्य इस्लामी राज्यों में वृद्धि करना था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मुस्लमानों को लडने की कला सिखाई जाती थी जिससे वे इस्लामी राज्यों में वुद्वि कर सकें।

नैतिकता का विकास

इस्लामी शिक्षा का चौथा उद्देश्य नैतिकता का विकास था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मुस्लिम बालको को नैतिक पुस्तकों का अध्ययन कराया जाता था।

भौतिक सुखों को प्राप्त करना–

इस्लामी शिक्षा का पाँचवा उद्देश्य भौतिक सुखों को प्राप्त करना था। इसके लिए बालको को उपाधियाँ तथा मौलवियों का उचें–उचें पद दिए जाते थे जिससे वे भौतिक सुखों का आनन्द ले सकें।

चरित्र निर्माण

मोहम्मद साहब का विश्वास था कि केवल चरित्रवान व्यक्ति ही उन्नति कर सकता है। अतः इस्लामी शिक्षा का उद्देश्य मुस्लमान बालकों का चरित्र निर्माण करना था।

वर्तमान भारत में शिक्षा के उचित उददेश्य

भारत हजारों वर्षों तक दासता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। इसलिए न हमारी शिक्षा भारतीय संस्कृति पर ही आधारित रही और न ही हमारी शिक्षा का कोई राष्ट्रीय उद्देश्य रह सका। 15 अगस्त 1947 को हमारे यहाँ विदेशी नियन्त्रण समाप्त हुआ। उसी दिन से भारत एक सर्वसता लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। दूसरे शब्दों में, जनतंत्र की आत्मा शिक्षा होती हैं। अतः हमारी जनतंत्रीय सरकार शिक्षा शास्त्रियों, दार्शनिक तथा समाज सुधारकों ने शिक्षा को भारतय संस्कृति पर आधारित करने तथा नए जनतान्त्रिक समाज को सफल बनाने के लिए, शिक्षा के उचित उददेश्यों के निर्माण की आवश्यकता अनुभव की। अतः सरकार ने – 1. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 2. माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा 3. कोठारी आयोग की नियुक्ति की।

विश्वविद्यालय आयोग के अनुसार शिक्षा के उददेश्य

विश्वविद्यालय आयोग ने भारतीय शिक्षा के अग्रलिखित उद्देश्य निर्धारित किए है–

1. विवेक का विस्तार करना।
2. नए ज्ञान के लिए इच्छा जागृत करना।
3. जीवन का अर्थ समझने के लिए प्रयत्न करना।
4. व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना।

माध्यमिक आयोग के अनुसार शिक्षा के उददेश्य

माध्यमिक आयोग आयोग ने व्यक्ति तथा भारतीय समाज की आवष्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा के निम्न उद्देश्य निर्धारित किए है–

1. जनतांत्रिक नागरिकता का विकास।
2. कुशल जीवन–यापन कला की दीक्षा।
3. व्यवसायिक कुशलता की उन्नति।
4. व्यक्तित्व का विकास।
5. नेतृत्व के लिए शिक्षा।

कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा का महत्व

उत्पादन में वृद्धि करना

वर्तमान जनतंत्रीय भारत का प्रथम उद्देश्य है– उत्पादन में वृद्धि करना। भारत में जनसंख्या की वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही है। हम देखते

है। कि हमारे देश में खाद्य साम्रगी, वस्त्र, दवाईयाँ तथा कल–पुरजे आदि आवश्यक वस्तुओं की अब भी बहुत कमी है। हमें चाहिए कि हम अपने यहाँ विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन को गति प्रदान करें।

सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास

राष्ट्र के पुर्ननिर्माण के लिए राष्ट्रीय एकता परम आवश्यक है। इस एकता के न होने के सभी नागरिक राष्ट्रहित की परवाह न करते हुए केवल अपने–2 निजी हितों को पूरा करने में ही व्यस्त हो जाते है।

जनतंत्र को सुदृढ़ बनाना

जनतंत्र को सफल बनाने के लिए शिक्षा परम् आवश्यक है। अतः जनतंत्र को सुदृढ़ बनाना शिक्षा का उद्देश्य है।

देश का आधुनिकीकरण

प्रगतिशील देशों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा ज्ञान में विकास होने के कारण दिन–प्रतिदिन नए–2 अनुसंधान हो रहे है। इनके कारण नव–समाज का निर्माण हो रहा है।

सामाजिक, नैतिक तथा आध्यत्मिक मूल्यों का विकास करना है।[5]

निष्कर्ष

उपर्युक्त वाक्यों में स्पष्ट है कि शिक्षा समाज में जागरूकता की जननी रही है। शिक्षा के बिना समाज का कोई आस्तित्व ही नहीं है। शिक्षा व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक नैतिक जीवन का प्राण है। मैंने शिक्षा और समाज पर लेख पुस्तको में से पढकर लिखा है जो कि लाईब्रेरी में पड़ी हुई हैं मेरा उद्देश्य उन पुस्तकों मे कुछ महत्वपूर्ण शब्दों, लेखों को थोड़े से शब्दों में उजागर करना है।

संदर्भ

1. सिकलीगर पी0 सी0 ''मिड डे मिल एण्ड स्कूल एजुकेशन प्लानिंग इम्पलेमैंटेशन एण्ड इफैक्टीवनैंस'', कन्सप्पैंट पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2011।
2. शर्मा सरोज, ''शिक्षा एंव भारतीय संमाज'' श्याम प्रकाशन, जयपुर।
3. सिंह विनय, ''प्राचीन भारत में व्यवसायिक समाज और आर्थिक विकास'' क्लिोस बुक्स, नई दिल्ली–110002
4. त्रिपाठी सुश्री अल्का, शुक्ला ग्रीष्मा ''शिक्षा सिद्वान्त एवं आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा ''साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन, जयपुर।
5. शर्मा आर डी, ''उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षा'' विश्व भारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली–110002